भारतीय ज्ञान परंपरा

संस्कृति, दर्शन, शैक्षिक विचारधाराएँ और नवाचार

सम्पादक :
डॉ. दिनेश चन्द्र शर्मा

भारतीय ज्ञान परंपरा :

संस्कृति, दर्शन, शिक्षा विचारधाराएँ और नवाचार

सम्पादक :

डॉ. दिनेश चन्द्र शर्मा

Ph.D., D.Lit. (Sub.)

निदेशक, कॉम्पिटिशन प्लस ग्रुप ऑफ इन्स्टीट्यूशन,
अजमेर

छवि पब्लिकेशन्स

अजमेर-305001

प्रकाशक :

छवि पब्लिकेशन्स

अजमेर-305001

मो. 9660111549

संस्करण :

प्रथम 2022-2023

ISBN : **978 - 81 - 89435 - 64 - 6**

मूल्य - **300/-**

रचना - **भारतीय ज्ञान परम्परा में शिक्षा के समाजशास्त्रीय आधार**

सम्पादक - **डॉ. दिनेश चन्द्र शर्मा**

मुद्रक - **श्रीनिवास प्रिन्टोग्राफिक्स, अजमेर**

12. वैदिक चिन्तन में परिवार संस्था

लता शर्मा
सहायक आचार्य (समाज विज्ञान विभाग)
हुकुमचन्द नोबेल इंस्टीट्यूट ऑफ साईंस एण्ड टेक्नोलॉजी, अजमेर

भारतीय संस्कृति का मूलाधार वेद हैं। वेद केवल धार्मिक ग्रंथ नहीं, अपितु मानव जीवन के प्रत्येक पक्ष — सामाजिक, नैतिक, आर्थिक, राजनैतिक और आध्यात्मिक — के मौलिक तत्त्वों का विधान करने वाले विश्व के प्राचीनतम ज्ञानकोश हैं। भारतीय मनीषियों ने वेदों को 'साक्षात् ज्ञानस्वरूप' कहा है, क्योंकि वे केवल उपदेश नहीं, बल्कि अनुभव का प्रतिफल हैं। इसी ज्ञानपरंपरा में परिवार संस्था का भी मूल स्वरूप हमें वेदों में निहित मिलता है।

भारतीय संस्कृति में परिवार को केवल रक्त-संबंधों की संस्था नहीं, बल्कि धमज़्, संस्कार और संस्कृति की धुरी माना गया है। वैदिक दृष्टिकोण में परिवार मनुष्य के व्यक्तित्व-विकास का प्रथम विद्यालय है। इसी में समाज का बीज निहित है, क्योंकि समाज का निर्माण परिवार से और परिवार का आधार धर्म से होता है।

'परिवार' शब्द संस्कृत की 'परि' उपसर्ग और 'वार' धातु से निर्मित है, जिसका अर्थ है - 'जो चारों ओर से संरक्षण प्रदान करे'। इस प्रकार परिवार को जीवन की सुरक्षा, पोषण और मागज़्दशज़्न देने वाली संस्था कहा जा सकता है।

वेदों में परिवार के लिए 'गृह', 'कुल', 'संघ' और 'कुटुम्ब' जैसे शब्दों का प्रयोग हुआ है। ऋग्वेद में 'कुल' शब्द का प्रयोग संयुक्त रूप में मिलता है, जबकि अथर्ववेद में 'गृह' को यज्ञ का केंद्र कहा गया है। इससे स्पष्ट है कि वैदिक युग का परिवार केवल भौतिक निवास नहीं था, वह धार्मिक और सांस्कृतिक जीवन का केन्द्रबिंदु था।

ऋग्वेद (10.85) में वैवाहिक संस्कार का अत्यंत सूक्ष्म और सजीव चित्रण मिलता है, जिसमें पत्नी से कहा गया है — 'साम्राज्ञी श्वशुरे भव, साम्राज्ञी श्वववां भव।' अर्थात् — हे वधू! अपने ससुराल के प्रत्येक सदस्य पर समान स्नेह और अधिकार रख, सबकी साम्राज्ञी बन।

यह श्लोक वैदिक परिवार की संयुक्तता, पारस्परिक सम्मान और सामंजस्य की भावना का परिचायक है।

वेदों में परिवार को धर्म की साधना का क्षेत्र कहा गया है। गृहस्थाश्रम, जो चार आश्रमों में दूसरा आश्रम माना गया है, सम्पूर्ण सामाजिक और धार्मिक जीवन का आधार था।

यजुर्वेद में कहा गया है कि — 'गृहस्थ: सर्वाश्रमाणां मूलम्।' अर्थात् गृहस्थाश्रम ही सभी आश्रमों का मूल है।

यह इस बात का संकेत है कि ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ और संन्यास इन सभी आश्रमों का पोषण गृहस्थ के द्वारा ही सम्भव होता है। अत: वैदिक परिवार केवल व्यक्तिगत सुख-सुविधा की व्यवस्था न होकर, समाज के समग्र संतुलन का दार्शनिक माध्यम था।

वैदिक युग में पारिवारिक जीवन को धर्म के प्रत्यक्ष व्यवहार का रूप माना गया। पति-पत्नी दोनों को 'सहधर्मचारिणी' कहा गया है। विवाह को केवल शारीरिक या सामाजिक अनुबंध नहीं, बल्कि यज्ञ के समान पवित्र संस्कार बताया गया।

ऋग्वेद में विवाह को 'सप्तपदी यज्ञ' कहा गया है, जिसके माध्यम से पति-पत्नी सात प्रतिज्ञाएँ लेकर धमज़्, अथज़्, काम और मोक्ष के मार्ग पर साथ चलने का व्रत लेते हैं।

परिवार में प्रतिदिन के यज्ञ, अतिथि-सत्कार, दान और सेवा — ये सब कर्म धर्मपालन के अंग थे। गृहपति को 'यजमान' कहा गया, और गृहिणी को 'सहयज्ञिनी'। इससे यह सिद्ध होता है कि वैदिक परिवार धमज़् और कमज़् दोनों का व्यावहारिक केंद्र था।

वेदों में समाज का मूल इकाई परिवार को ही कहा गया है। परिवार के माध्यम से ही भाषा, संस्कृति, परंपरा और मूल्य संचारित होते थे। अथर्ववेद में परिवार के सामंजस्य का सुंदर चित्रण मिलता है —

'माता पिता भवत: सौमनस्यं, भ्रातृभि: सह मन्यताम्।'

अर्थात् — परिवार में माता-पिता, भाई-बहन सभी एक-दूसरे के प्रति सौहार्दपूर्ण रहें।

इससे स्पष्ट होता है कि सामाजिक एकता और शांति का प्रथम सूत्र परिवार से ही प्रारम्भ होता है। परिवार वह लघु समाज था, जिसमें व्यक्ति सामूहिकता, दायित्व, और अनुशासन का अभ्यास करता था।

वैदिक समाज का आर्थिक ढाँचा गृहस्थाश्रम पर आधारित था। गृहस्थ ही कृषि, पशुपालन, व्यापार और दान के माध्यम से न केवल अपने परिवार, बल्कि संपूर्ण समाज का पालन करता था।

यजुर्वेद (7.48) में कहा गया है — 'गृहस्थ एव यज्ञेन देवान् तर्पयति।'

अर्थात् गृहस्थ ही अपने यज्ञ कमोज़् से देवताओं और समाज का पालन करता है।

इससे यह भी प्रकट होता है कि परिवार केवल उपभोग का केन्द्र नहीं, बल्कि उत्पादन, दान और वितरण की इकाई भी था।

परिवार वैदिक युग का प्रथम शिक्षण-केन्द्र था। बालक को वेद, शिष्टाचार, सत्य, संयम और सेवा के संस्कार परिवार में ही प्राप्त होते थे। माता को 'गुरुपत्नि' और पिता को 'गुरु' कहा गया है। ऋग्वेद में उल्लेख है —

'माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः।'

इस वाक्य में मातृभूमि, मातृत्व और पुत्रधमज़ का एकात्मबोध प्रकट होता है।

संस्कारों का आरंभ भी परिवार से ही होता था — गर्भाधान से लेकर विवाह तक के सोलह संस्कार परिवार के भीतर ही सम्पन्न होते थे। इस प्रकार परिवार व्यक्ति की शिक्षा, संस्कार और सामाजिक चेतना का प्रथम केंद्र था।

वेदों में स्त्री को पुरुष के समान आध्यात्मिक और सामाजिक अधिकार प्राप्त थे। पत्नी को सहधर्मचारिणी, गृहलक्ष्मी, सखी और सम्राज्ञी कहा गया है। वह गृहस्थ जीवन की आध्यात्मिक धुरी थी। वेदों में वर्णित है कि यज्ञ, दान, तप और निर्णयों में पत्नी की उपस्थिति आवश्यक मानी जाती थी। यह स्पष्ट करता है कि वैदिक परिवार में स्त्री केवल गृहकार्य तक सीमित न होकर, धर्म और निर्णय की समान भागिनी थी।

वेदों में गृहस्थ जीवन को आत्मशुद्धि का साधन माना गया है। पारिवारिक उत्तरदायित्वों का निष्काम भाव से पालन करना ही आत्मोन्नति का मार्ग बताया गया है।

ऋग्वेद के अनुसार — 'यः पश्यति स पश्यति।' अर्थात् — जो अपने कर्तव्यों में सत्यदृष्टि रखता है, वही यथाथज़ को देख सकता है।

गृहस्थाश्रम को इस प्रकार 'संन्यास का अभ्यास-क्षेत्र' कहा जा सकता है, जहाँ कर्म करते हुए भी मनुष्य त्याग की भावना से जीवन जीता है।

वर्जेस और लॉक के अनुसार परिवार ऐसे व्यक्तियों का समूह है जो विवाह, रक्त या गोद लेने के संबंधों से जुड़कर एक गृहस्थी का निमाज़्ण करते हैं और समान संस्कृति का संरक्षण करते हैं।

इलियट और मैरिल परिवार को समाज की सबसे बहुआयामी संस्था मानते हैं, जो संतानोत्पत्ति, पालन, शिक्षा, अनुशासन और संस्कृति का संवाहक है।

आगबर्न और निमकॉफ के मत में परिवार वह इकाई है जिसमें पति-पत्नी या किसी एक अभिभावक के साथ संतान स्थायी रूप से रहती है।

सी. जकरमेन परिवार को ऐसी संस्था मानते हैं जिसमें पति-पत्नी और अन्य सदस्य मिलकर सहयोगपूर्वक जीवन व्यतीत करते हैं।

वेदों में परिवार को केवल सामाजिक नहीं, बल्कि धार्मिक और आध्यात्मिक केंद्र कहा गया है। यजुर्वेद में पिता, पितामह और प्रपितामह को नमस्कार कर वंश की

शुद्धता की प्रार्थना की गई है। इससे स्पष्ट है कि वैदिक परिवार केवल वर्तमान पीढ़ी का नहीं, बल्कि पूर्वजों की परंपरा का संवाहक था।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि आधुनिक समाजशास्त्रियों ने परिवार को सामाजिक इकाई माना है, जबकि वैदिक मनीषियों ने उसे धर्म, संस्कृति और जीवन-साधना का मूल आधार स्वीकार किया है।

वैदिक काल में परिवार संस्था के स्पष्ट संकेत प्राप्त होते हैं, जिनसे यह ज्ञात होता है कि वैदिक परिवार आदर्श व्यवस्था का प्रतीक था। इसका उद्देश्य आदर्श व्यक्तियों का निर्माण करना तथा परस्पर प्रेम, सहयोग और सौहार्द पर आधारित जीवन जीना था। उस समय परिवार के सदस्य संयुक्त रूप से जीवनयापन करते थे और वृद्ध पुरुष परिवार के सब सदस्यों को स्नेहपूर्वक रहने का उपदेश देता था।

वेदों में कहा गया है कि — ''मैं तुम्हें समान हृदय वाला, समान मन वाला और द्वेष-शून्य बनाता हूँ; तुम सब परस्पर वैसे ही स्नेह करो जैसे गाय अपने बछड़े से करती है।'' यह मंत्र परिवार में प्रेम, एकता और आत्मीयता के भाव का प्रतीक है।

वैदिक समाज में परिवार या गृहस्थाश्रम को समाज की मूल इकाई माना गया। यह व्यक्ति और समाज के बीच सेतु के समान कार्य करता था। सौमनस्य सूक्त में गृहस्थ जीवन को सौहार्द, मधुर वाणी और परस्पर सहानुभूति का आधार बताया गया है। वहाँ यह भावना प्रकट की गई है कि परिवार के सभी सदस्य एक-दूसरे से मधुर व्यवहार करें, एक मन से रहें और सदैव एक-दूसरे के प्रति सौम्य भाव रखें।

इस प्रकार वैदिक परिवार केवल सामाजिक संस्था नहीं, बल्कि सामूहिक जीवन का नैतिक एवं सांस्कृतिक केंद्र था। यही सौमनस्य, प्रेम और सहयोग की भावना समाज की एकता और राष्ट्र की उन्नति का आधार बनी। वैदिक युग का यह संदेश आज के स्वार्थप्रधान युग में और भी अधिक प्रासंगिक है।

परिवार एक सामाजिक इकाई के रूप में समाज और राष्ट्र ङ्क दोनों के प्रति अत्यंत उत्तरदायी भूमिका निभाता है। सुदृढ़ राष्ट्र निर्माण के लिए आवश्यक सामाजिक मूल्य, परम्पराएँ और आस्थाएँ व्यक्ति को परिवार से ही प्राप्त होती हैं। प्राचीन वैदिक परिवार मुख्यतः पितृसत्तात्मक, पितृवंशीय और पितृस्थानीय थे।

मैक्समूलर ने संयुक्त परिवार को भारत की 'आदिक परम्परा' बताया है, जो पीढ़ी दर पीढ़ी समाज की धारा में प्रवाहित होती रही। हरिदत्त वेदालंकार के अनुसार परिवार ही जातीय अस्तित्व के संरक्षण, वंश-वृद्धि और जीवन की निरन्तरता का प्रमुख साधन है। वैदिक युग में शिक्षा पूर्ण करने के पश्चात आचायज़ शिष्य को उपदेश देता था — 'सन्तान रूपी तन्तु का विच्छेद मत करना', अर्थात् परिवार की निरन्तरता बनाए रखना।

वैदिक दृष्टि में विवाह और परिवार के बिना मानव जीवन अधूरा माना गया है।

व्यक्ति नश्वर है, परन्तु परिवार के माध्यम से मानवता अमर बनी रहती है। वास्तव में, परिवार ही समाज की निरन्तरता का आधार और अमरता का प्रतीक है।

ऋग्वैदिक युग में परिवार पितृप्रधान और संयुक्त स्वरूप का था। पिता परिवार का मुखिया होता था — सम्पत्ति का स्वामी, संरक्षक और अनुशासन का केंद्र। परिवार के सभी सदस्य उसकी आज्ञा को कर्तव्यपूर्वक पालन करते थे। हालाँकि परिवार पितृसत्तात्मक था, फिर भी वैदिक काल में कन्याओं को विवाह संबंधी स्वतंत्रता प्राप्त थी, और उन्हें स्वयंवर के माध्यम से अपना वर चुनने का अधिकार भी था।

वैदिक युग में स्त्रियों को पुरुषों के समान अधिकार प्राप्त थे तथा समान रूप से उपनयन संस्कार करके ब्रह्मचयाज़्श्रम में प्रवेश कराया जाता था। वे वेद, दर्शन, संगीत, चिकित्सा, शिल्प एवं गृहकर्म की शिक्षा प्राप्त करती थीं और अनेक याज्ञिक कार्यों में सक्रिय भाग लेती थीं।

इस काल में लोपामुद्रा, घोषा, अपाला, विश्ववारा, रोमशा, काक्षीवती, उर्वशी आदि अनेक ब्रह्मवादिनी स्त्रियाँ थीं जिन्होंने ऋग्वेद की ऋचाओं की रचना की। बृहदारण्यक उपनिषद में गार्गी और मैत्रेयी जैसी विदुषी महिलाओं के दार्शनिक संवाद ज्ञान और आत्मविद्या के उच्च आदर्श प्रस्तुत करते हैं।

ऋग्वेद में विवाह को गृहस्थाश्रम में प्रवेश का द्वार कहा गया है, जहाँ पति-पत्नी दोनों को यज्ञ और धार्मिक कर्तव्यों में समान भागीदारी का अधिकारी माना गया है। वैदिक स्त्री-शिक्षा का उद्देश्य था — उन्हें सद्गृहिणी, सुशिक्षिता, और समाज की हितैषिणी बनाना।

अथर्ववेद में कन्या के यज्ञ और वाक्शक्ति का वर्णन मिलता है, जिससे यह स्पष्ट होता है कि विवाहपूवज़् भी स्त्रियाँ यज्ञ एवं वेदाध्ययन की अधिकारी थीं।

महर्षि दयानंद के शब्दों में — "स्त्री का पूजनीय देव उसका पति है, और पुरुष की पूजनीय देवी उसकी पत्नी है।"

अर्थात्, वैदिक दृष्टि में पति और पत्नी एक-दूसरे के पूरक और समान रूप से सम्माननीय हैं।

वैदिक समाज में माता को परिवार का केन्द्र माना गया है। वेदों में माता की महिमा का अनेक स्थानों पर उल्लेख मिलता है उसे स्वर्ग से महान, पृथ्वी से भी बड़ी और परमात्मा की प्रतिनिधि कहा गया है। माता को बालक की प्रथम शिक्षिका माना गया है, क्योंकि वही उसके जीवन में संस्कारों का प्रथम बीज बोती है।

वेदों ने पुत्र को सदैव माता के अनुकूल आचरण करने का उपदेश दिया है, जिससे परिवार में सौहार्द्र और प्रेम की भावना बनी रहती थी। वैदिक परिवार निष्काम प्रेम, पारस्परिक स्नेह और नैतिक जीवन के आदर्शों से परिपूर्ण था। यही पारिवारिक

सौहार्द्र आगे चलकर समाज और राष्ट्र की नैतिक संरचना का आधार बना।

महर्षि दयानन्द सरस्वती ने यजुर्वेद भाष्य में नारी-संबंधी कई शब्दों का उल्लेख किया है जैसे— सरमा, मण्डूकी, दूर्वा, इष्टका आदि, जो स्त्री के विविध रूपों और गुणों के प्रतीक हैं। ऋग्वेद में लगभग बीस विदुषी स्त्रियों जैसे— लोपामुद्रा, विश्वावारा, अपाला, घोषा, रोमशा, काक्षीवती, उर्वशी आदि के नाम मिलते हैं जिन्होंने वैदिक सूक्तों की रचना की थी।

वैदिक स्त्रियाँ पाकविद्या (रसोई कला) में भी दक्ष थीं। यजुर्वेद में 'उखा' (पकाने की बटलोई) और 'स्वौपशा' (स्वादिष्ट भोजन बनाने वाली स्त्री) जैसे शब्दों का उल्लेख मिलता है, जिससे यह स्पष्ट है कि स्त्रियों को गृहकला में निपुण बनाना भी वैदिक शिक्षा का अंग था।

वैदिक चिंतन में परिवार को केवल जैविक या आर्थिक इकाई नहीं, बल्कि मानव निर्माण की प्रथम संस्था माना गया है। यह व्यक्ति को ऐसा जीवन जीने की शिक्षा देता है, जिससे उसका स्वयं का कल्याण भी हो और समाज का हित भी सुनिश्चित हो। संगठित समाज की शक्ति उसके सदस्यों के पारस्परिक सौहार्द्र और नैतिक एकता में निहित है, और इसका आरंभ परिवार से होता है।

वैदिक परिवार में माता, पिता, पितामह, पत्नी, भाई, बहन, यहाँ तक कि आश्रित प्राणी तक एक अदृश्य आत्मीय सूत्र में बंधे माने गए हैं। परिवार का मुखिया (गृहपति) अपने आचार-विचार से समस्त सदस्यों के जीवन और चरित्र को प्रभावित करता है, इसलिए उसके लिए श्रेष्ठत्व धारण करना अनिवार्य बताया गया है।

वेदों में व्यक्ति के वाणी, आचरण और दृष्टि में माधुर्य की कामना की गई है— कि उसके शब्द, कर्म और व्यवहार सब मधुर और मंगलमय हों। यह मधुरता परिवार में प्रेम, सहयोग और नैतिक अनुशासन को जन्म देती है।

वैदिक काल में परिवार संयुक्त स्वरूप का था और उसमें परस्पर सम्मान, कर्तव्य-बोध तथा सौहार्द का भाव प्रमुख था। स्त्रियों को सम्मानित स्थान प्राप्त था; शतपथ ब्राह्मण में कहा गया है कि पत्नी पति का आधा भाग है, उसके बिना पुरुष अपूर्ण है। नववधू को घर की सम्राज्ञी कहा गया है, जिससे वैदिक परिवार में स्त्री के अधिकार और गरिमा का बोध होता है।

अत: वैदिक परिवार प्रणाली का उद्देश्य था— 'मनुर्भव' अर्थात् पूर्ण मानव का निर्माण। यह परिवार व्यक्ति में कर्तव्य, सहयोग, और नैतिक उत्तरदायित्व की भावना विकसित कर समाज और राष्ट्र के निर्माण का आधार बनता है।

निष्कर्षत: वैदिक चिंतन में परिवार केवल सामाजिक इकाई नहीं, बल्कि संस्कार,

नैतिकता और मानवता की प्रथम पाठशाला है। परिवार को व्यक्ति और समाज के बीच सेतु के रूप में देखा गया है, जहाँ प्रेम, सौहार्द्र, सहयोग और कर्तव्यबोध के आदर्श पल्लवित होते हैं।

वैदिक परिवार संयुक्त, पितृप्रधान और नैतिक मूल्यों पर आधारित था, जिसमें माता को केन्द्र स्थान प्राप्त था। पिता मार्गदशज़्क था, माता प्रथम शिक्षिका थी, और पति–पत्नी समान रूप से गृहस्थ जीवन के सहयोगी माने गए। स्त्रियों को शिक्षा, यज्ञ, और निर्णयों में भागीदारी का अधिकार था, जिससे परिवार में संतुलन और समरसता बनी रहती थी। वेदों में परिवार को एक आदर्श संस्था के रूप में चित्रित किया गया है — जो व्यक्ति को आत्मोन्नति, समाज को एकता और राष्ट्र को स्थायित्व प्रदान करता है। वैदिक परिवार का उद्देश्य केवल जैविक वंशवृद्धि नहीं, बल्कि 'मनुर्भव' पूर्ण मानव का निर्माण था।

❑❑❑